International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 25-09-2022; Accepted: 11-10-2022; Published: 28-10-2022
Volume 8, Issue 5, 2022, Page No. 65-66

हिन्दू साम्प्रदायिकता और विभाजनः एक ऐतिहासिक अध्ययन

राहुल
पी. एच. डी. शोधार्थी, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा, भारत

सारांश
यदि हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में सांप्रदायिकता पर दृष्टिपात करें तो यह आधुनिक राजनीति के उद्भव का ही परिणाम है। हालाँकि इससे पूर्व भी भारतीय इतिहास में हमें ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं जो सांप्रदायिकता की भावना को बढ़ावा देते हैं लेकिन वे सब घटनाएँ अपवाद स्वरूप ही रही हैं। उनका प्रभाव समाज एवं राजनीति पर व्यापक स्तर पर नहीं दिखता। वर्तमान संदर्भ में सांप्रदायिकता का मुद्दा न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर भी चिंता का विषय बना हुआ है। देश में बार–बार होने वाली सांप्रदायिक हिंसा धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देने वाले संवैधानिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगता है। सांप्रदायिक हिंसा में पीड़ित परिवारों को इसका सबसे अधिक खामियाजा भुगतना पड़ता है, उन्हें अपना घर, प्रियजनों यहाँ तक कि जीविका के साधनों से भी हाथ धोना पड़ता है। सांप्रदायिकता समाज को सांप्रदायिक आधार पर विभाजित करती है। सांप्रदायिक हिंसा की स्थिति में अल्पसंख्यक वर्ग को समाज में संदेह की दृष्टि से देखा जाता है और इससे देश की एकता एवं अखंडता के लिये खतरा उत्पन्न होता है। सांप्रदायिकता देश की आंतरिक सुरक्षा के लिये भी चुनौती प्रस्तुत करती है क्योकि सांप्रदायिक हिंसा को भड़काने वाले एवं उससे पीड़ित होने वाले दोनों ही पक्षों में देश के ही नागरिक शामिल होते हैं।

मूल शब्दः साम्प्रदायिकता, अलगाववादी, विशेषाधिकार, राष्ट्रवाद, अल्पसंख्यक, परिकल्पना, हिन्दू महासभा

प्रस्तावना
इस अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या हिन्दू साम्प्रदायिकता ने विभाजन का मार्ग अग्रसर किया या फिर कहीं न कहीं हिन्दू साम्प्रदायिकता भी विभाजन का कारण रही। उन्नीसवीं शताब्दी को भारत में सामाजिक और बौद्धिक जागरण का दौर माना जाता है, जिसने हिन्दुओं को राष्ट्रीय एकता का महत्व समझाते हुए संगठित होने व राजनीतिक रूप से प्रेरित करने का काम किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में महर्षि दयानंद ने हिन्दू वापस लौटो का नारा लगाकर आह्वान किया कि संगठित हो जाओ तो दूसरी तरफ महाराष्ट्र में तिलक द्वारा शिवाजी व गणेश महोत्सव की शुरुआत की गई।[1] इसी बीच 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना, मुस्लिम प्रजा को अपनी और आकर्षित करने के लिए की गई। जिसका लाभ ब्रिटिश सरकार ने भली भांति उठाया और अपनी फूट डालो राज करो कि नीति का यहां सूत्रपात करते हुए 1909 में मार्ले मिंटो अधिनियम का सहारा लेते हुए मुस्लिमों को साम्प्रदायिकता की और अग्रसर किया। इसके अतिरिक्त मुस्लिमों को प्रथक निर्वाचन का अधिकार प्रदान करते हुए हिन्दू सांप्रदायिक ताकतों के में में यह प्रश्न उत्पन्न कर दिया कि अगर इन्हें प्रथक निर्वाचन मताधिकार मिल जाता है तो इससे इनके हाथ में कहीं न कहीं शक्ति या विशेषाधिकार सिमट कर रह जाएंगे। निर्वाचन पद्धति ने जनसंख्या पर आधारित श्रेष्ठता को निरर्थक कर दिया। इस तरह इस अधिनियम ने हिन्दुओं में संगठित साम्प्रदायिकता को जन्म दिया।[2]

लीग के नेताओं की अलगाववादी नीति की प्रतिक्रिया के रूप में तेजबहादुर सप्रू ने मई 1909 में अखिल भारतीय लीग की बैठक में राजनीतिक प्रतिनिधित्व के मामले में हिन्दू मुस्लिम वार्ता का चेहरा स्पष्ट करते हुए हिन्दुओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए हिन्दू नेताओं को केवल निष्ठा प्रदर्शन और शिष्टमंडलों का आयोजन करने वाला कहा।[3] एक तरफ जहां मुस्लिम लीग के नेतृत्व में साम्प्रदायिकता बढ़ रही थी, वहीं हिन्दू संगठन भी इस साम्प्रदायिकता के दौर में हिस्सा लेने लगे। इस सम्प्रदायिक आंदोलन का सूत्रपात करने का दायित्व पंजाब के हिन्दुओं ने अपने कंधों पर लिया। पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना (1909) से लेकर 1923 तक हिन्दू सांप्रदायिक आंदोलन मुख्यत पंजाब तक ही सीमित रहा। इस विचारधारा और राजनीति की नींव इसके नेताओं लालचंद तथा बी. एन. मुखर्जी ने रखी। इन्होंने कांग्रेस को मुसलमानों को राजी करने के लिए हिन्दू हितों की बली देने को जिम्मेदार ठहराया। अपनी पुस्तिका 'राजनीति में आत्म अस्वीकार' में लालचंद ने कांग्रेस को हिन्दुओं का ऐसा दुर्भाग्य बताया जिसको उन्होंने स्वयं आमंत्रित किया था।4 मुस्लिम लीग की विचारधारा और तरीकों की सफलता और क्षमता से प्रभावित होकर पंजाब के बहुसंख्यक मुसलमानों से अपने हितों की रक्षा के लिए हिन्दू सांप्रदायिक ताकतों ने हिन्दू सांप्रदायिक आंदोलन का श्रीगणेश किया।

भारतीय राजनीति के इस नए मोड़ पर भाव व्यक्त करते हुए इंडियन स्पेक्टेटर अखबार के व्याख्यान से हिन्दू सभा के जन्म संबंधी अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। इस अखबार ने लिखा कि हिन्दू सभा के जन्म का कारण मुस्लिम लीग है, इसने पंजाब में आंख खोली जहां हिन्दू अल्पसंख्यक है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस संस्था ने अन्य प्रांतों में भी समर्थन जुटा लिया है।5 वहीं 'ट्रिब्यून' ने लिखा की निष्पक्ष दर्शन को समझाने के लिए यही प्रयाप्त होगा की इस समुदाय के ह्रदय में हलचल थी जो बहुत से यथार्तवादी व्यापारियों को सभा तक ले आई। अध्यक्षीय मंच से भाषणों में व्यापारी व बुद्धि जीवियों को जगह दी गई जिस कारण इन वर्गों ने इस सभा का सदस्य बनने के लिए खुद को गौरांवित व सौभाग्यशाली समझा।[6] इस सभा को पंजाब प्रांतीय हिन्दू सम्मेलन ने अपने अंबाला अधिवेशन में प्रस्ताव पारित किया की भारत के हिन्दुओं का एक सम्मेलन हरिद्वार में कुंभ के अवसर पर 1915 में किया जाए। पंजाब द्वारा अपनाए इस मार्ग का बिहार, बंगाल और संयुक्त प्रांत के हिन्दुओं ने समर्थन किया। इस प्रकार धीरे धीरे हिन्दू साम्प्रदायिकता सुदृढ रूप से संगठित होती चली गई।[7]

लाला लाजपराय और पंडित मदनमोहन मालवीय जैसे प्रमुख नेता गांधीजी की शर्तों से सहमत न थे, जिसके आधार पर गांधीजी ने हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित की थी। इसके बाद भी इन नेताओं ने असहयोग व खिलाफत आंदोलन को अपना समर्थन दिया।

इसी तरह 1919 अधिनियम द्वारा हुए परिवर्तनों ने सांपरदायिक राजनीति को एक गंभीर रूप से दिया। इन सबके कारण हिन्दू साम्प्रदायिकता बढ़ती चली गई तथा निष्क्रिय हिन्दू महासभा को पुनर्जीवित करने में सहायता प्राप्त हुई। 1923 के बनारस सम्मेलन में हिन्दू सांप्रदायिक आंदोलन को नई दिशा देने हेतु लक्ष्यों को फिर से परिभाषित किया गया। महासभा के नए घोषित लक्ष्य में कहा गया कि हिन्दू राष्ट्र की प्रगति के लिए हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू सभ्यता का संरक्षण और प्रोत्साहन था। इससे स्पष्ट हुआ की हिन्दू महासभा के द्वारा धीरे धीरे साम्प्रदायिकता बढ़ती जा रही थी जिसका अंतिम परिणाम भारत का विभाजन ही था।[8]

लाला हरदयाल के विचारों से भी साम्प्रदायिकता की झलक देखने को मिलती है, उन्होंने कहा मैं यह घोषित करता हूं कि हिंदुस्तान को हिन्दू जाति और पंजाब का भविष्य चार स्तंभों पर आधारित हैः हिन्दू राज, हिन्दू संगठन, मुसलमानों को शुद्धि तथा अफगानिस्तान व सीमांत प्रांत की शुद्धि। जब तक हिन्दू राष्ट्र ये चार बात पूरी नहीं करता, हमारी भविष्य की पीढ़ी खत्री में रहेगी और हिन्दू जाति की सुरक्षा असंभव हो जाएगी। इस प्रकार से हिन्दू साम्प्रदायिकता और सांप्रदायिक संगठन के स्वरूप में परिवर्तन और भी प्रतिक्रियात्मक बनते चले गए।[9] हिन्दू महासभा के संविधान में परिवर्तन उसके 1937 के चुनाव में हारने के बाद अनिवार्य हो गया। इस समय विनायक दामोदर सावरकर के कंधों पर हिन्दू महासभा व हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा का दायित्व आ गया। जिसका मुख्य लक्ष्य हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करना था। सावरकर ने कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित प्रादेशिक राष्ट्रवाद की परिकल्पना को अस्वीकार करके धर्म और संस्कृति पर आधारित हिन्दू राष्ट्रवाद को विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया।[10]

के. एस. रामास्वामी ने मदुरा अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए कहा की 'हिन्दुओं ने बहुसंख्यक होने के कारण हिन्दू स्वराज्य की मांग की और कहा प्रजातंत्र के मूल सिद्धांतों के अनुसार हिन्दू शासन करेंगे' इस तरह की नीति के कारण समझौते की अपेक्षा साम्प्रदायिकता का रूप और प्रबल हुआ। साम्प्रदायिकता की इसी लहर में 1925 में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' ने जन्म लिया। जो कि पुरुष संगठन व सर्वोच्च अधिनायक के सिद्धांतों पर आधारित था। सरसंघचालक एम. एस. गोलवरकर ने अपनी पुस्तक 'वी' में स्पष्ट किया की यदि अल्पसंख्यकों को ये मांगे मंजूर कर ली जाती है तो हिन्दुओं का राष्ट्रीय जीवन छिन्न भिन्न हो जाएगा। गोलवारकर ने गैर हिन्दुओं को चेतावनी देते हुए हिन्दू धर्म व संस्कृति को अपनाने या फिर अपनी नागरिकता संबंधी अधिकारों से वंचित होने में से किसी एक रास्ते को चुनने को कहा।[11]

सांप्रदायिकता के कारण

सांप्रदायिकता की उत्पत्ति के लिये किसी एक कारण को पूर्णतः जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता बल्कि यह विभिन्न कारणों का एक मिला–जुला रूप बन गया है। सांप्रदायिकता के लिये जिम्मेदार कुछ महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं

- राजनीतिक दलों द्वारा अपने राजनीतिक लाभों की पूर्ति के लिये सांप्रदायिकता का सहारा लिया जाता है।
- एक प्रक्रिया के रूप में राजनीति का सांप्रदायिकरण भारत में सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने के साथ–साथ देश में सांप्रदायिक हिंसा की तीव्रता को बढ़ाता है।
- विकास का असमान स्तर, वर्ग विभाजन, गरीबी और बेरोजगारी आदि कारक सामान्य लोगों में असुरक्षा का भाव उत्पन्न करते हैं।
- असुरक्षा की भावना के चलते लोगों का सरकार पर विश्वास कम हो जाता है परिणामस्वरूप अपनी जरूरतों के हितों को पूरा करने के लिये लोगों द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों, जिनका गठन सांप्रदायिक आधार पर हुआ है, का सहारा लिया जाता है।
- दो समुदायों के बीच विश्वास और आपसी समझ की कमी या एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय के सदस्यों का उत्पीड़न,आदि के कारण उनमें भय, शंका और खतरे का भाव उत्पन्न होता है।
- इस मनोवैज्ञानिक भय के कारण लोगों के बीच विवाद, एक–दूसरे के प्रति नफरत, क्रोध और भय का माहौल पैदा होता है।

निष्कर्ष

अतः हिन्दू साम्प्रदायिकता एकाएक शुरू न होकर कई दशकों से पनप रही सांप्रदायिक सोच व हिन्दू राष्ट्रवाद का परिणाम थी। जिसे मुस्लिम लीग व कांग्रेस ने बढ़ाने का काम किया और हिन्दू महासभा ने इन हिन्दुओं को एकत्रित कर एक संगठन का रूप देकर, इस आंदोलन को देशव्यापी बनते हुए पूरे देश में हिन्दू साम्प्रदायिकता को फैलाने का काम किया। इससे विभाजन ना चाहते हुए भी जरूरी हो गया क्योंकि इस समय मुस्लिम लीग मुस्लिम राज्य के लिए जगह जगह दंगे करवा रही थी। इस समस्या को देखते हुए और अन्य कोई विकल्प के ने होने के कारण विभाजन को टालना नामुमकिन हो गया।

संदर्भ सूची

1. अरोड़ा ऐ. सी, भारत का इतिहास (1857–1950), प्रदीप प्रकाशन, जालंधर, 2010, पृ. 413
2. दीक्षित प्रभा, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1980, पृ. 48–49
3. वही, पृ.127
4. चन्द्र बिपिन, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ.387
5. दीक्षित प्रभा, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1980, पृ.30
6. वही, पृ. 133
7. प्रकाश इन्दर, ए रिव्यू ऑफ दि हिस्ट्री एंड वर्क ऑफ हिन्दू महासभा, नई दिल्ली, 1952, पृ.30
8. दीक्षित प्रभा, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1980, पृ. 138–139
9. आंबेडकर बी. आर, थोट्स ऑन पाकिस्तान, बंबई, 1941, पृ. 81
10. दीक्षित प्रभा, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1980, पृ.153
11. प्रकाश इन्दर, ए रिव्यू ऑफ दि हिस्ट्री एंड वर्क ऑफ हिन्दू महासभा, नई दिल्ली, 1952, पृ.99
12. चन्द्र बिपिन, आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, 1990, पृ.351